संत तुलसी साहब

भारत की संस्कृति ऋषियों, संतो और भगवन्तों की संस्कृति रही है। यहाँ समय-समय पर व्यास, वाल्मीकि, शुकदेव, नारद, वशिष्ठ, दधीचि, रामानन्द, नानक, कबीर, सूर आदि जैसे सन्त-मनीषी अवतरित होते ही रहे हैं। उन्हीं ऋषियों एवं सन्तों की दीर्घकालीन अविच्छिन्न परम्परा के एक अद्‌भुत एवं गौरवमयी कड़ी के रूप में संत तुलसी साहब अवतरित हुए थे।

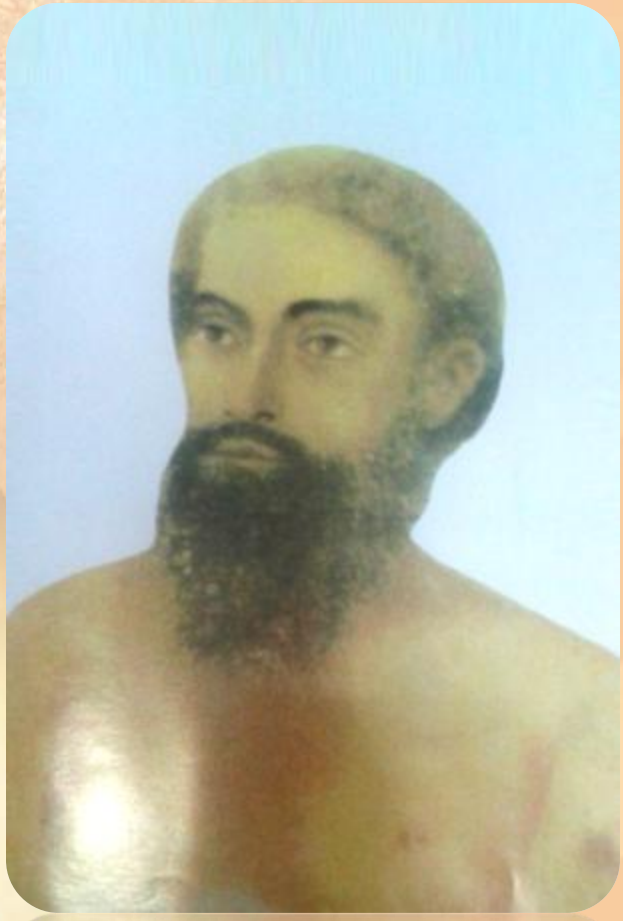

इनका अवतरण पूना के समारा स्थान में उच्चवंशीय ब्राह्मण जाति के पेशवा परिवार में सन् १७६३ ई. में हुआ था। ये पुना राजघाराने के युवराज थे। परन्तु प्रबल वैराग्य एवं पूर्वजन्म के संस्कारवश पिता के चाहते हुए भी राजगद्‌दी को छोड त्याग का व्रत लिया। भारत के गौरव महात्मा बुद्ध के सदृश ही अपने इकलौते पुत्र एवं रूपवती पत्नी लक्ष्मीबाई के मोह को छोड़कर प्रभु प्राप्ति के लिए त्याग एवं तपस्या का जीवन स्वीकार किया। ये प्रायः भिक्षावृत्ति पर ही जीवन निर्वाह करते थे। अध्यात्म का मूल मंत्र एकान्त, शान्त एवं मौन का प्रयोग करने के लिए ही हाथरस के पुराने किले के खण्डहर में इन्होंने भौतिकवादी लोगों से दूर रहकर प्रभुचिन्तन करते हुए आत्मसाक्षात्कार किया।

एक बार सन्त तुलसी साहब ने हरिद्वार के गंगातट पर घूमते हुए एक ब्राह्मण और शूद्र को झगड़ते देखा। तब इन्होंने ब्राह्मण से पूछा- ' क्यों लड़ रहे हो? यह बेचारा दीन-हीन व्यक्ति है, इस पर दया करो।' तब उत्तेजित ब्राह्मण बोल पड़ा- '' मैं गंगा में स्नान कर रहा था इस शुद्र ने मूझे छूकर अपवित्र कर दिया। देखिये न, मेरे पास दूसरी धोती नहीं है जिसे कि मैं पहनकर पूजा करूँ।' संत तुलसी साहब ने कहा - 'जानते हो, गंगा और शूद्र की उत्पति एक ही स्थान से हुई है?' तुम्हारे शास्त्र के अनुसार शूद्र और गंगा जी दोनो ही विष्णु के चरणों से निकले हैं, फिर तुम एक को पवित्र और दूसरे को अपवित्र मानते हो?' यह सुनकर ब्राह्मण लज्जित हुआ और उनके उपदेश से वह सदा के लिए पवित्र हो गया।

एक बार सत्संग में रामकिसुन नामक एक गड़ेरिया चुपके से उनके उपदेश को बैठकर सुन रहा था। जब संत तुलसी साहब को मालूम हुआ तब उन्होंने पूछा कि तुम यहाँ क्यों आते हो? जवाब मिला- 'मुझको आपकी वाणी प्यारी लगती है।' इस पर प्रसन्न होकर तुलसी साहब ने एक पुस्तक देकर उसे कहा कि इसे पढ़ो। उसने जवाब दिया की मैं तो अनपढ़ हूँ, कैसे पढ़ सकूँगा ? लेकिन साहिब जी की पुनः आज्ञा पाकर उसने पुस्तक हाथ में ली और एकाएक पढ़ने लगा। इसी तरह इनके शिष्य सुर स्वामी जी भी अनपढ़ और जनमान्ध थे। उनको भी इन्होने आज्ञा दी कि ग्रन्थ पढ़ो। सूर स्वामी जी द्वारा अपनी असमर्थता जताने पर इन्होंने डाँटा और पुनः ग्रन्थ पढ़ने की आज्ञा दी। हठात् सूर स्वामी जी की आँखों में ज्योति आ गई और वे भी पढ़ने लगे।

संत तुलसी साहब से ही परमार्थ की रौशनी राधास्वामी के संस्थापक स्वामी शिवदयाल सिंह जी महाराज (राधा स्वामी) एवं परम संत बाबा देवी साहब को मिली। तुलसी साहब कभी-कभी माहेश्वरी लाल जो कि बाबा देवी साहब के पिता थे, उनके यहाँ सत्संग करने के लिए आया करते थे। इनके ही आशीर्वाद से मुंशी माहेश्वरी लाल को एक पुत्र की प्राप्ति हुई थी जो बाद में संतमत के प्रचारक परम संत बाबा देवी साहब एवं सन्त महर्षि मेँहीँ के ज्ञानदाता गुरू बने थे।

सन्त भाव एवं श्रद्धा के भूखे होते हैं। एक दिन सत्संग में सत्संग-प्रेमी महिलायें जिस हालत में थी, जल्दी-जल्दी वहाँ चली आयी। उस जमाने में ऐसी मलमल नहीं थी। उनके खद्दद के पकड़े पसीने से भींगे हुए थे।

जब इन महिलाओं ने आकर माथा टेका तो तुलसी साहब के एक सेवक गिरधारी लाल ने उनसे कहा- 'माताओं पीछे हटकर बैठो, तुम्हारे कपड़ों से बदबू आती है।''

तुलसी साहब ने कहा - 'गिरधारी ! तुझे इनके प्रेम की खूशबू की खबर नहीं। यह क्या ख्याल लेकर आई है, तू नहीं जानता। इनसे तुझे बदबू आती है, लेकिन मुझे बदबू नहीं आती।' जिनको ऐसी प्रीती होती है, गुरू उनसे प्रसन्न होता है और अपना निज सेवक मानता है।

संत तुलसी साहब ने संसार में फैले हुए जात-पाँत, कर्म-कांड, पूजा-पाठ एवं साम्प्रदायिक कट्टरता को समाप्त करने के उधेश्य से संतमत का प्रचार किया। इन्होने परमात्म-भजन के लिए दिल की सफाई को ही महत्वपूर्ण बताते हुए कहा-हृदय की सफाई से असली भजन होगा।

संत तुलसी साहब ने बहिर्मुख से अंतर्मुख होने का उपदेश दिया। इन्होने समाज में प्रेम एवं सद्भावना का ज्ञान फैलाया। इनके प्रमुख शिष्यों में सूर स्वामी जी महाराज, गिरधारी जी महाराज, शिव दयाल सिंह जी महाराज एवं बाबा देवी साहब जी महाराज थे। संत साहब ने अस्सी वर्ष की आयु में १८८४ ई० में अपनं पंचतत्व निर्मित शरीर का त्याग किया था।

तुलसी साहब के उपदेश

- मुक्ति के लिए सांसारिक इच्छाओं और तृष्णाओं पर नियंत्रण आवश्यक है।
- आवागमन और चौरासी के इस जेलखाने से बाहर निकलने का मार्ग केवल मनुष्य तन में है।
- सच्चा मार्ग वही है जो इसी जन्म में जीते-जी मुक्ति दिलाये।
- शरीर के नौ द्वारों से चेतनता को समेटकर तीसरे तिल पर आने की क्रिया को संतो ने जीते-जी मरना कहा है।
- सभी सन्तों की शिक्षा अपने मूल रूप से एक ही है। वे सभी परमात्मा की उस बादशाहत का जिक्र करते हैं जो कि हमारे अन्दर है।

इनकी प्रमुख रचनायें, घटरामायण, रत्नसागर शब्दावली आदि हैं।